श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

युगलगीत - (अर्थ)

श्रीशुक उवाच

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।

कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ 1॥

श्री शुकदेवजी कहते हैं– परीक्षित! भगवान श्री कृष्ण के गौओं को चराने के लिए प्रतिदिन वन में चले जाने पर उनके साथ गोपियों का चित भी चला जाता था। उनका मन श्री कृष्ण का चिंतन करता रहता और वे वाणी से उनकी लीलाओं का गान करती रहती। इस प्रकार वे बड़ी कठिनाई से अपना दिन बितातीं॥1॥

श्रीगोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो

वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।

कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं

गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ 2॥

व्योमयानवनिताः सह सिद्धै

र्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।

काममार्गणसमर्पितचित्ताः

कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ 3॥

गोपियाँ आपस में कहतीं—अरी सखी! अपने प्रेमीजनों को प्रेम वितरण करने वाले और द्वेष करने वालों तक को मोक्ष दे देने वाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोल को बायीं बाँह की लटका देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरी को अधरों से लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियों को उसके छेदों पर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धिपत्नियाँ आकाश में अपने पति सिद्धिगणों के साथ विमानों पर चढ़कर आ जाती हैं और उस तान को सुनकर अत्यन्त ही चकित तथा विस्मित हो जाती हैं। पहले तो उन्हें अपने पतियों के साथ रहने पर भी चित्त की यह दशा देखकर लज्जा मालूम होती है; परन्तु क्षणभर में ही उनका चित्त कामबाण से बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं। उन्हें इस बात की सुधि नहीं रहती कि उनकी नीवी खुल गयी है और उनके वस्त्र खिसक गये हैं ॥2-3॥

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं

हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।

नन्दसूनुरयमार्तजनानां

नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ 4॥

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो

वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।

दन्तदष्टकवला धृतकर्णा

निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ 5॥

अरी गोपियों! तुम यह आश्चर्य की बात सुनो! ये नन्दनन्दन कितने सुन्दर हैं। जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हार का रूप धारण कर लेती हैं, शुभ्र मोती-सी चमकने लगती हैं। अरी वीर! उनके वक्षःस्थल पर लहराते हुए हार में हास्य की किरणें चमकने लगती हैं। उनके वक्षःस्थल पर जो श्रीवत्स की सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघ पर बिजली ही स्थिररूप से बैठ गयी है। वे जब दुःखीजनों क सुख देने के लिये, विरहियों के मृतक शरीर में प्राणों का

संचार करने के लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब व्रज के झुंड-के-झुंड बैल, गौएँ और हरिन उनके पास ही दौड़ आते हैं। केवल आते ही नहीं, सखी! दाँतों से चबाया हुआ घास का ग्रास उनके मुँह में ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही जाते हैं। दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभाव से खड़े हो जाते हैं, मानों सो गये हैं या केवल भीतपर लिखे हुए चित्र हैं। उनकी ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरी की तान उनके चित्त चुरा लेती है ॥4-5॥

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै

र्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।

कर्हिचित्सबल आलि स गोपैर्गाः

समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ 6॥

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै

तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।

स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः

प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ 7॥

हे सखि! जब वे नन्द के लाड़ले लाल अपने सिरपर मोरपंख का मुकुट बाँध लेते हैं, घुँघराली अलकों में फूल के गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धातुओं से अपना अंग-अंग रँग लेते हैं और नये-नये पल्लवों से ऐसा वेष सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा ग्वालबालों के साथ बाँसुरी में गौओं का नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते है; उस समय प्यारी सखियों! नदियों की गति भी रुक जाती है। वे चाहती हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतम के चरणों की धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायँ, परन्तु सखियों! वे भी हमारे ही जैसी मन्दभागिनी हैं। जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का आलिंगन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती है और जड़ता रूप संचारीभाव का उदय हो जाने से हम अपने हाथों को हिला भी नहीं पातीं, वैसे ही वे भी प्रेम के कारण काँपने लगती हैं। दो-चार बार अपनी तरंगरूप भुजाओं को काँपते-काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेश से स्तंभित हो जाती हैं ॥6-7॥

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य

आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।

वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-

र्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ 8॥

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं

व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।

प्रणतभारविटपा मधुधाराः

प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म ॥ 9॥

अरी वीर! जैसे देवता लोग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्यों के स्वामी भगवान नारायण की शक्तियों का गान करते हैं, वैसे ही ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करते रहते हैं। वे अचिन्त्य ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावन में विहार करते हैं और बाँसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्धन की तराई में चरती हुई गौओं को नाम ले-लेकर पुकारते हैं, उस समय वन के वृक्ष और लताएँ फूल और फलों से लद जाती हैं, उनके भार से डालियाँ झुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हों, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान विष्णु की अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेम से फूल उठती हैं, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब-की-सब मधुधाराएँ ऊँड़ेलने लगती हैं ॥8-9॥

दर्शनीयतिलको वनमाला-

दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।

अलिकुलैरलघु गीतामभीष्ट-

माद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः ॥ 10॥

सरसि सारसहंसविहङ्ग-

श्वारुगीताहृतचेतस एत्य ।

हरिमुपासत ते यतचित्ता

हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ 11॥

अरी सखी! जितनी भी वस्तुएँ संसार में या उसके बाहर देखने योग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं—ये हमारे मनमोहन। उनके साँवले ललाट पर केसर की खौर कितनी फबती है—बस, देखती ही जाओ! गले में घुटनों तक लटकती हुई वनमाला, उसमें पिरोयी हुई तुलसी की दिव्य गन्ध और मधुर मधु से मतवाले होकर झुंड-के-झुंड भौंरें बड़े मनोहर एवं उच्च स्वर से गुंजार करते रहते हैं। हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौंरों की उस गुनगुनाहट का आदर करते हैं और उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं। उस समय सखि! उस मनिजनमोहन संगीत को सुनकर सरोवर में रहने वाले सारस-हंस आदि पक्षियों का भी चित्त उनके हाथ से निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दर के पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं—मानो कोई विहंगमवृत्ति के रसिक परमहंस ही हों, भला कहो तो यह कितने आश्चर्य की बात है ॥10-11॥

सहबलः स्रगवतंसविलासः

सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।

हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण

जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ 12॥

महदतिक्रमणशङ्कितचेता

मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।

सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभि-

श्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ 13॥

अरी व्रजदेवियों! हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पों के कुण्डल बनाकर अपने कानों में धारण कर लेते हैं और बलरामजी के साथ गिरिराज के शिखरों पर खड़े होकर सारे जगत् को हर्षित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं—बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्द में भरकर उसकी ध्वनि के द्वारा सारे विश्व का आलिंगन करने लगते हैं—उस समय श्याम मेघ बाँसुरी की तान के साथ मन्द-मन्द गरजने लगता है। उसके चित्त में इस बात की शंका बनी रहती है कि कहीं मैं जोर से गर्जना कर उठूँ और वह कहीं बाँसुरी की तान के विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले आये, तो मुझसे महात्मा श्रीकृष्ण का अपराध हो जायगा। सखी! वह इतना ही नहीं करता; वह सब देखता है कि हमारे सखा घनश्याम को घाम लग रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छत्र बन जाता है। अरी वीर! वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेम से उनके ऊपर अपना जीवन ही निछावर कर देता है—नन्हीं-नन्ही फुहियों के रूप में ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पों की वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी बादलों की ओट में छिपकर देवता-लोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं ॥12-13॥

विविधगोपचरणेषु विदग्धो

वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।

तव सुतः सति यदाधरबिम्बे

दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥ 14॥

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः

शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।

कवय आनतकन्धरचित्ताः

कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ 15॥

सतीशिरोमणि यशोदाजी! तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबालों के साथ खेल खेलने में बड़े निपुण हैं। रानीजी! तुम्हारे लाड़ले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसी से सीखा नहीं। अपने ही अनेकों प्रकार राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। जब वे अपने बिम्बाफल सदृश लाल-लाल अधरों पर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरों की अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशी की परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा,

शंकर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी—जो सर्वज्ञ हैं—उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकने पर भी उनके हाथ से निकल कर वंशीध्वनि में तल्लीन हो ही जाता है, सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसी में तन्मय हो जाते हैं ॥14-15॥

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र

नीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ।

व्रजभुवः शमयन्खुरतोदं

वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ 16॥

व्रजति तेन वयं सविलास-

वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।

कुजगतिं गमिता न विदामः

कश्मलेन कवरं वसनं वा ॥ 17॥

अरी वीर! उनके चरणकमलों में ध्वजा, वज्र, कमल, अंकुश आदि के विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिन्ह हैं। जब व्रजभूमि गौओं के खुर से खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणों से उसकी पीड़ा मिटाते हुए गजराज के समान मन्दगति से आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चितवन हमारे हृदय में प्रेम के, मिलन की आकांक्षा का आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोल तक नहीं सकतीं, मानों हम जड़ वृक्ष हों! हमें तो इस बात का भी पता नहीं चलता कि हमारा जूडा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीर पर का वस्त्र उतर गया है या है ॥16-17॥

मणिधरः क्वचिदागणयन्गा

मालया दयितगन्धतुलस्याः ।

प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे

प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ॥ 18॥

क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः

कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।

गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो

गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥19॥

अरी वीर! उनके गले में मणियों की माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसी की मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसी से तुलसी की माला को तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियों की माला से गौओं की गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखा के गले में बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरी के मधुर स्वर से मोहित होकर कृष्णसार मृगों की पत्नी हरिनियाँ भी अपना चित्त उनके चरणों पर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने घर-गृहस्थी की आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्दनन्दन को घेरे रहतीं हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौड़ आती हैं और वहीँ एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती हैं, लौटने का नाम भी नहीं लेतीं ॥18-19॥

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो

गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।

नन्दसूनुरनघे तव वत्सो

नर्मदः प्रणयिणां विजहार ॥ 20॥

मन्दवायुरुपवात्यनकूलं

मानयन्मलयजस्पर्शेन ।

वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये

वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ 21॥

नन्दरानी यशोदाजी! वास्तव में तुम बड़ी पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले हैं। तुम्हारे वे लाड़ले लाल बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओं को तरह-तरह से हास-परिहास के द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकली का हार-पहनकर जब वे अपने को विचित्र वेष में सजा लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओं के साथ यमुनाजी के तट पर खेलने लगते हैं, उस समय मलयज चन्दन के समान शीतल और सुगन्धित स्पर्श से मन्द-मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लाल की सेवा करती हैं और गन्धर्व आदि उपदेवता वंदीजनों के समान गा-बजाकर उन्हें संतुष्ट करते हैं तथा अनेकों प्रकार की भेंटें देते हुए सब ओर से घेरकर उनकी सेवा करते हैं ॥20-21॥

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो

वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।

कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते

गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ 22॥

उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना-

मुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ।

दित्सयैति सुहृदासिष एष

देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ 23॥

अरी सखी! श्यामसुन्दर व्रज की गौओं से बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओं को लौटाकर आते ही होंगे; देखो, सायंकाल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी ? रास्ते में बड़े-बड़े ब्रम्हा आदि वयोवृद्ध और शंकर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणों की वन्दना जो करने लगते हैं। अब गौओं के पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्ति का गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। गौओं के खुरों से उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमाला पर पड़ गयी है। वे दिन भर जंगलों में घूमते-घूमते थक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभा से हमारी आँखों को कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं।

देखो, ये यशोदा की कोख से प्रकट हुए सबको अहल्दित करने वाले चन्द्रमा हम प्रेमीजनों की भलाई के लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं ॥22-23॥

मदविघूर्णितलोचन ईषन-

मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।

बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं

मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ 24॥

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो

यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।

मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं

मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥25॥

सखी! देखो कैसा सौन्दर्य है! मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान पड़ती हैं। गले में वनमाला लहरा रही है। सोने के कुण्डलों की कान्ति से वे अपने कोमल कपोलों को अलंकृत कर रहे हैं। इसी से मुँह पर अध पके बेर के समान कुछ पीलापन जान पड़ता है और रोम-रोम से विशेष करके मुखकमल से प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो, अब वे अपने सखा ग्वालबालों का सम्मान करके उन्हें विदा कर रहे हैं। देखो, देखो सखी! व्रज-विभूषण श्रीकृष्ण गजराज के समान मदभरी चाल से इस सन्ध्या वेला में हमारी ओर आ रहे हैं। अब व्रज में रहने वाली गौओं का, हम लोगों का दिनभर का असह्य विरह-ताप मिटाने के लिये उदित होनेवाले चन्द्रमा की भाँति ये हमारे प्यारे श्यामसुन्दर समीप चले आ रहे हैं ॥24-25॥

श्री शुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियों राजन कृष्णलीला गायतिः ।

रेमिरेऽह्सुः तच्चित्तास्तनमनस्का महोदयाः ॥26॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! बड़भागिनी गोपियों का मन श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था। वे श्रीकृष्णमय हो गयी थीं। जब भगवान श्रीकृष्ण दिन में गौओं को चराने के लिये वन में चले जाते, तब वे उन्हीं का चिन्तन करतीं रहतीं और अपनी-अपनी सखियों के साथ अलग-अलग उन्हीं की लीलाओं का गान करके उसी में रम जाती। इस प्रकार उनके दिन बीत जाते ॥26॥

॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावनक्रीडायां गोपिकायुगलगीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥